Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 5
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

व्यवहार निर्णय में दिव्य प्रमाण : एक अनुशीलन

डॉ. आरती यादव
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, चौधरी चरण सिंह डिग्री कॉलेज हेंवरा सैफ़ई, इटावा उत्तर प्रदेश।

Article Info
Publication Issue :
September-October-2023
Volume 6, Issue 5
Page Number : 115-120
Article History
Received : 01 Sep 2023
Published : 29 Sep 2023

शोध सारांश— धर्मशास्त्रों में दिव्य प्रमाणों का विशद वर्णन किया गया है जिससे इसकी महत्ता स्वत: सिद्ध है, परन्तु साथ ही साथ धर्मशास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि अन्य प्रमाणों से सत्य की सिद्धि न् होने पर ही दिव्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि दिव्यों को देने के समय देश, काल परिस्थिति की उपयुक्तता का विशेष महत्त्व है।

मुख्य शब्द— व्यवहार, निर्णय, दिव्य, प्रमाण, धर्मशास्त्र, सत्य, देश, काल, परिस्थिति।

धर्मशास्त्रों में व्यवहार अथवा विवादों का निर्णय करने के लिए विशेष प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, जिसका पालन करते हुए कर्त्तव्यपरायण राजा को अपनी प्रजा का रक्षण करना चाहिए। प्रजा का रक्षण और उसे भयमुक्त रखना राजा का राजधर्म माना गया है। नारद स्मृति के अनुसार दो व्यक्तियों में विवाद होने पर राजा उनमें धर्मसहायक होता है अर्थात् न्याय के द्वारा धर्मरक्षा में सहायक होता है, इसलिए राजा को रागद्वेष से रहित होकर भली प्रकार विवादों का निपटारा करना चाहिए। स्मृतिकारों ने 18 प्रकार के विवादों का वर्णन किया है। धर्मशास्त्रों में इन विवादों का सत्यान्वेषण अर्थात् वादी अथवा प्रतिवादी में से कौन सत्य बोल रहा है और कौन असत्य इसका निर्णय व्यवहार के चतुष्पादों के अन्तर्गत किया गया हैं। व्यवहार के ये चतुष्पाद निम्नलिखित हैं –

1.भाषापाद　　2. उत्तरपाद
3. क्रियापाद　　४. निर्णयपाद

भाषापाद के अन्तर्गत अर्थी प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपना आवेदन प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी उस आवेदन के विरुद्ध अपना उत्तर प्रस्तुत करता है, जिसे उत्तरपाद कहते हैं। क्रियापाद के अन्तर्गत अर्थी अथवा कुछ मामलों में प्रत्यर्थी अपने पक्ष के साधक प्रमाण प्रस्तुत करता है। धर्मशास्त्रकारों ने उन साधक प्रमाणों की संख्या चार बतलायी गयी है जो निम्न हैं –

1. लिखित　　2. भुक्ति　　3.साक्षी　　४.दिव्य

दिव्य प्रमाण - विशेष परिस्थितियों में जहां लिखित, भुक्ति अथवा साक्षी आदि प्रमाणों से सत्यता प्रमाणित न हो पा रही हो अथवा युक्ति जहां न्याय करने में समर्थ न हो, उन मामलों में देश, काल और बल को ध्यान में रखते हुए

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

दिव्य प्रमाण का प्रयोग किया जाना चाहिए, ऐसा धर्मशास्त्रकारों का मन्तव्य है। विभिन्न स्मृतियों में दिव्यों की संख्या अलग- अलग विहित है।

अग्नि दिव्य और जल दिव्य[1] – **मनुस्मृति**

तुला, अग्नि, जल, विष और कोष दिव्य।[2] - **नारद स्मृति**

तुला, अग्नि, जल, विष और कोष दिव्य।[3] **याज्ञवल्क्य स्मृति**

धट(तुला दिव्य), अग्नि, जल, विष, कोश, तण्डुल, तप्तमाषक, फ़ाल, धर्मद दिव्य[4] - **वृहस्पति**

दिव्य दान विधि- धर्मशास्त्रकारों ने भिन्न भिन्न दिव्यों के सम्बन्ध में विधियों का वर्णन किया है, जो निम्न हैं -

तुला दिव्य- याज्ञवल्क्य स्मृति में तुला दिव्य प्रदान करने की विधि इस प्रकार बताई गई है - तौल में निपुण व्यक्तियों द्वारा अभियुक्त को तुला पर चढाया जाये और उसके वजन के तुल्य (मिट्टी आदि) जो वस्तु हो उसके बराबर रेखा बनाकर उसे तुला से उतारे। उसके बाद दिव्य करने वाला तुला से इस प्रकार प्रार्थना करे हे तुले! तुम सत्य का स्थान हो। पूर्वकाल में देवताओं ने तुम्हारा निर्माण किया है। हे कल्याणि! अत: तुम सत्य बोलो। मुझे सन्देह से मुक्त करो। हे माते! यदि मैं पापी हूं तो नीचे ले जाओ और यदि शुद्ध हूं तो ऊपर ले जाओ। तौला गया शोध्य पुरुष यदि तुलाविधि के अनुष्ठान के बाद बढे तो उसको नि:सन्दिग्ध रूप से निष्पाप समझना चाहिए। यदि उक्त अनुष्ठान के बाद पहले के बराबर अथवा न्यून हो तो शोध्यपुरुष को शुद्धि रहित अर्थात् अशुद्ध समझना चाहिए।[5]

तुला के निर्माण की विधि नारद स्मृति में बताते हुए कहा गया है कि छ: हाथ विस्तृत दो दण्डों को दो हाथ गहरे गड्ढे में स्थापित करना चाहिए। तुला का निर्माण खदिर अथवा केन्दु के सरल काष्ठ से करना चाहिए। तुला चतुष्कोण और दो कील से संयुक्त हो, वह स्थिर रहे, गन्ध माला, पुष्प आदि से सुशोभित हो।[6] चार हाथ की तुला का निर्माण करना चाहिए, स्तम्भ की उंचाई भी इसी प्रकार रहनी चाहिए। दो तुला के मध्य में डेढ हाथ का व्यवधान रहना चाहिए।[7]

अग्नि दिव्य- अग्नि दिव्य के दान की विधि का वर्णन याज्ञवल्क्य स्मृति में इस प्रकार किया गया है - अग्नि का दिव्य करने वाले के दोनों हाथों में ब्रीहि मलवा कर और अलक्तक का चिह्न लगाकर पीपल के सात पत्तों को सात सूतों से वेष्ठित करे। (पुन: अग्नि दिव्य करने वाला अग्नि से इस प्रकार प्रार्थना करे) हे अग्ने! आप सभी प्राणियों के

1.व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 78

2. ना. स्मृ. 4/1/252

3. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 78

4. कृत्य कल्पतरु पृ. सं. 198

5. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/100–102

6. नारद स्मृति 4/1/260–266

7. व्यवहार चिन्तामणि

भीतर संचार करते हैं। हे पावक! (शोधक – पवित्र करने वाले) कवि! पुण्य और पाप के साक्षी रूप में सत्य को कहो। उसके ऐसा कहने के बाद उसके दोनों हाथों पर पचास पल के बराबर अग्निवर्ण का (लाल जलता हुआ) लौहपिण्ड दोनों हाथों पर रखे। वह उस लौहपिण्ड को लेकर सात मण्डलों तक चले। एक मण्डल सोलह अंगुल का होता है और दो मण्डलों के मध्य इतना ही अन्तर होता है। तदन्तर अग्नि को छोड़कर ब्रीहि को हाथों पर मले। यदि न जला हो तो शुद्धि को प्राप्त करता है। लौह पिण्ड के बीच में गिर जाने पर या संदेह होने पर दुबारा पिण्ड लेकर चले।[8]

नारद ने अग्नि की स्तुति इस प्रकार करने के लिए कहा है - हे अग्नि ! तुम प्राणियों के अन्त:करण में विचरण करने से, जिस प्रकार साक्षाद्रष्टा बाह्य पदार्थों को यथावत् देखता है, उसी प्रकार तुम प्राणियों के अन्त:करण में विद्यमान शुभाशुभ कर्मों को देखते हो।[9] हे अग्ने! जिन पाप पुण्यों को मानव नहीं जान पाते उन पाप पुण्यों को तुम्हीं जानते हो। अत: व्यवहार के द्वारा पाप के अभियोग से युक्त यह पुरुष अपनी शुद्धि को प्रकाशित करना चाहता है। इसलिए इस प्रकार के संशय से इस पुरुष की रक्षा तुम्हीं कर सकते हो।

अग्नि दिव्य देने के पूर्व दिन उपवास रखकर एवं अधिवासन आदि से अभिशस्त करके उसके दूसरे दिन प्रथम मण्डल में स्थित होकर हाथ की परीक्षा करने अश्वत्थ अर्थात् पीपल के सात पत्रों को विन्यस्त करके जौ, दूर्वा, शमी, दही इन वस्तुओं के साथ हथेली को सूत्र से वेष्टित कर लौह पिण्ड को प्रथम मण्डल में विन्यस्त करना चाहिए। इसी प्रकार एक – एक करके छठें मण्डल तक जाये तत्पश्चात् आठवें मण्डल में स्थित होकर नवें मण्डल में लौहपिण्ड को त्याग दें। मण्डल अतिक्रम आदि का संशय होने पर फ़िर से यही प्रक्रिया दोहरायी जानी चाहिए।[10]

जल दिव्य- जल दिव्य प्रदान करने की विधि याज्ञवल्क्य स्मृति में इस प्रकार वर्णित है- हे वरुण ! आप सत्य से मेरी रक्षा करें' इस वचन से जल को अभिमन्त्रित कर नाभि तक जल में खड़े व्यक्ति की कमर पकड़कर जल में प्रवेश करे। उसके डुबकी लगाने के साथ ही छोड़े गये बाण को लेने के लिए एक तीव्र गति वाला व्यक्ति जाय। यदि बाण को ले आने के समय तक वह डुबकी लगाये रहे तो वह शुद्ध होता है।[11] अन्यथा अर्थात् सर्वांग निमज्जन से विपरीत यदि शोध्य पुरुष का एक अंग भी दिखे तो उसे 'विशुद्ध' नहीं समझना चाहिए। एवं पहले जहां जल में निमग्न हुआ था उससे अन्यत्र यदि जल में निमग्न भी दिखे तथापि उसको अशुद्ध ही समझना चाहिए।[12] व्यवहार चिन्तामणि में वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि नाभिमात्र तक स्थिर जल में खड़े होकर बाहों को ऊपर उठाकर शोध्य पुरुष डुबकी लगाये। तभी एक बलवान् व्यक्ति तीर छोड़े और दूसरा बलवान् व्यक्ति उस तीरे को ले आये।

8. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/103–107
9. नारद स्मृति 4/289–290
10. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 80
11. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/108–109
12. नारद स्मृति 24/1/212

तत्पश्चात् ही यदि डूबा व्यक्ति सम्पूर्ण अंगों से यदि ऊपर आ जाये अथवा पूर्व स्थान छोड़ दे तो वह भंग पुरुष है अर्थात् वह अशुद्ध पुरुष है। अन्यथा वह शुद्ध पुरुष है।[13]

विष दिव्य- विष दिव्य के विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि हे विष ! तुम ब्रह्मा के पुत्र तथा सत्य धर्म में स्थित हो। इस अभिशाप से मेरी रक्षा करो और सत्य के द्वारा मेरे लिए अमृत बनो। इस प्रकार कह कर हिमालय पर उत्पन्न शृंग के विष को खा जाय। जो व्यक्ति विष को बिना उसका वेग (प्रभाव) प्रकट हुए ही पचा जाय वह शुद्ध पुरुष होता है।[14]

कोश दिव्य- उग्र देवों की पूजा कर उनके स्नानोदक को लावे। उसे दूसरे पात्र में रखकर तीन अञ्जलि (शोध्य पुरुष को) पिलावे। जिस व्यक्ति पर चौदह दिनों तक राजकृत या दैवकृत घोर विपत्ति नहीं पड़ती वह निस्संदेह शुद्ध है। ऐसा याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखित है।[15]

तण्डुल दिव्य – तण्डुल दिव्य के अन्तर्गत चावल को मिट्टी के बर्तन में रखकर धूप में सुखाया जाता था तत्पश्चात् पूजा करके उन चावलों को एक रात्रि पानी में भिगोया जाता था। दूसरे दिन उन चावलों को शोध्य पुरुष को निगलने के लिए दिया जाता था शोध्य पुरुष उन चावलों को निगलकर पीपल या भूर्ज के पत्रों पर थूकता था, थूक के साथ यदि रक्त आये अथवा पैर में कंपन हो तो वह अशुद्ध माना जाता था अन्यथा की स्थिति में वह शुद्ध माना जाता था।[16]

तप्तमाष दिव्य- तप्तमाष दिव्य में सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा मिट्टी से बना हुआ सोलह अंगुल लम्बा और चार अंगुल गहरे पात्र में बीस परिमाण के घृत अथवा तेल से परिपूर्ण करके उसे पूर्ण तप्त किया जाता था। तत्पश्चात् उसमें सुवर्ण माषक के आकार के स्वर्ण को डाला जाता था फ़िर उसे शोध्य पुरुष को अंगूठे या तर्जनी से निकालने के लिए कहा जाता था। यदि उसके अंगूठे अथवा तर्जनी में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है तो वह शुद्ध माना जाता है अन्यथा अशुद्ध माना जाता था।[17]

फ़ाल दिव्य- फ़ाल दिव्य के अन्तर्गत तौल में बारह पल वाले, आठ अंगुल व्यास वाले एवं चार अंगुल चौड़े लोहे के फ़ाल को आग में तपाकर तत्पश्चात् शोध्य पुरुष को जिह्वा से चाटने के लिए कहा जाता था यदि वह जलता नहीं था तो शुद्ध माना जाता था अन्यथा अशुद्ध।[18]

दिव्य परीक्षण हेतु उपयुक्त समय एवं ऋतु विधान – विभिन्न दिव्यों को प्रदान करने के लिए धर्मशास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न समय एवं ऋतुओं का विधान अथवा वर्जन किया है। पितामह का मत है कि चैत्र, मार्गशिर और वैशाख ये तीन साधारण मास सभी दिव्यों के लिए उपयुक्त हैं। धट दिव्य सभी ऋतुओं में दिया जा सकता है।

13. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 81
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/110–111
15. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/112–113
16. नारद स्मृति 4/1/237–242
17. नारद स्मृति 4/1/344–348
18. शुक्रनीति 4/5/237–238

शिशिर, हेमन्त और वर्षा ऋतु अग्नि दिव्य के लिए उपयुक्त हैं। शरद और ग्रीष्म ऋतु विश दिव्य के लिए प्रशस्त हैं। वात में वात दिव्य का वर्जन करना चाहिए।[19]

नारद स्मृति के अनुसार शीत ऋतु में जल दिव्य उचित नहीं है। ऊष्ण काल में अग्नि दिव्य एवं वर्षा के समय विष दिव्य तथा झंझावात के समय राजा को तुला दिव्य नहीं देना चाहिए।[20] ज्योतिष में नक्षत्रों के सिंहस्थ और मकरस्थ रहने पर और भृगु के अस्त हो जाने के पश्चात् एवं मलमास में दिव्य परीक्षण नहीं किया जाना चाहिए। रवि औए गुरु के उगने और शुक्र के अस्त होने एवं रवि के सिंहस्थ होने पर दिव्य परीक्षण नहीं करना चाहिए। अष्टमी और चतुर्दशी को प्रायश्चित और बुधवार और शनिवार को परीक्षा अथवा अधिवास नहीं करना चाहिए।[21]

वर्णानुसार दिव्य विधान- नारद स्मृति के अनुसार ब्राह्मण को तुला दिव्य, क्षत्रिय को अग्नि दिव्य, वैश्य को जल दिव्य और शूद्र को विष का दिव्य दिलाना चाहिए। साधारणत: सभी वर्णों के लिए कोश दिव्य कहा गया है। ब्राह्मण को विष दिव्य नहीं देना चाहिए। अथवा सभी वर्णों के लिए तुला कही गयी है।[22] कात्यायन स्मृति में कहा गया है कि राजन्य को अग्नि, विप्र को तुला, वैश्य को जल दिव्य में नियोजित करना चाहिए। अथवा द्विजोत्तमों को विषदिव्य छोड़कर सभी को सभी दिव्य दिया जा सकता है।[23]

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार स्त्री, बाल, वृद्ध, अन्धा, लंगड़ा, ब्राह्मण एवं रोगी के लिए तुला, क्षत्रिय के लिए अग्नि, वैश्य के लिए जल और शूद्र के लिए सात यव के बराबर विष का दिव्य दिया जाना चाहिए।[24] पुन: कात्यायन स्मृति में कहा गया है कि गोरक्षक अर्थात् गाय पालकर जीविका चलाने वाले, वाणिज्य करने वाले, शिल्पकार्य से जीवन यापन करने वाले, तथा कुशीलव अर्थात् गायक एवं प्रेष्य (अर्थात् सेवक का काम करने वाले) और वार्धुषिक अर्थात् बढई का जीवन बिताने वाले विप्र को शूद्रवत् दिव्य देना चाहिए।[25]

नारद स्मृति में लिखित है कि क्लीव, आतुर, सत्त्वहीन, दुख से पीड़ित बालक, वृद्ध और दास इनका परीक्षण सदा तुला दिव्य से करना चाहिए। रोगी को जल दिव्य, पित्त रोगियों को विषदिव्य, रिवत्री, अन्ध और कुनख वालों को अग्निदिव्य नहीं देना चाहिए। धर्मशास्त्र के ज्ञाताओं के अनुसार स्त्री, बालक, रोगी, वृद्ध और जो पुरुष दुर्बल हों उनको जलदिव्य के लिए नहीं डुबाना चाहिए। अर्थात् उनको जलदिव्य नहीं देना चाहिए। अनुत्साही लोगों को, व्याधि से पीड़ितों को, आर्त्तों को जल में निमज्जित नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये स्वल्पप्राण वाले कहे गये हैं और

19. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 84
20. व्यवहार प्रकाश पृ. सं. 144
21. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 84-85
22.नारद स्मृति 4/1/234-235
23. कृत्य कल्पतरु पृ. सं. 204
24. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/118
25. व्यवहार चिन्तामणि पृ. सं. 85

निमज्जित करते ही सद्य मर जाते हैं। साहसपूर्वक आने पर भी इनको जल में नहीं डुबाना चाहिए। और न ही अग्नि और विष के द्वारा इनका शोधन करना चाहिए।[26]

कात्यायन स्मृति में एक अन्य स्थान पर उल्लिखित है कि माता, पिता, द्विज, गुरू, राजा, स्त्री, बालक को मारने वाला, महापातकयुक्त, विशेषत: नास्तिक, लिंगी, प्रमद, मन्त्रयोगविद्, वर्णसंकरजात, पापाभ्यास में प्रवृत्त व्यक्ति, धर्मपरायण राजा को इन निन्दनीय अभियोगों में प्रवृत्त व्यक्तियों पर प्रयत्न पूर्वक दिव्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन अभियोगों में अभियुक्त व्यक्ति द्वारा नियुक्त किसी अच्छे व्यक्ति को दिव्य दिया जा सकता है परन्तु वह व्यक्ति यदि दिव्य लेना नहीं चाहता है तो उस (अभियुक्त) को अपने लोगों द्वारा सिद्ध करना चाहिए। महापातक से युक्त, विशेषत: नास्तिक एवं पापाभ्यास में रत व्यक्ति को दिव्य नहीं देना चाहिए ऐसा भृगु ने कहा है। जिन पापों में दिव्य का यत्नपूर्वक प्रतिषेध किया गया है। ऐसे अभियोगों में राजा को बिना सिद्ध किए अभियुक्त को नहीं छोड़ना चाहिए अपितु उनमें सज्जन व्यक्तियों को नियुक्त कर सिद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों में दिव्य प्रमाणों का विशद वर्णन किया गया है जिससे इसकी महत्ता स्वत: सिद्ध है, परन्तु साथ ही साथ धर्मशास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि अन्य प्रमाणों से सत्य की सिद्धि न् होने पर ही दिव्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि दिव्यों को देने के समय देश, काल परिस्थिति की उपयुक्तता का विशेष महत्त्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. नारदस्मृति (तिलोत्तमा टीका सहित), (सम्पादक) -ब्रजकिशोर स्वांई चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 1996.
2. शुक्रनीति, शुक्राचार्यकृत, (हिन्दी अनुवादक) -डॉ. जगदीश चन्द्र जैन चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1998.
3. मनुस्मृति: (सान्वयानुवादमनुभाष्यभासिकाभावावगाहिनीभाषाटीकोपेता), उर्मिला रुस्तगी, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005ई0.
4. ४. कात्यायनस्मृति, (हिन्दी अनुवादक) -पी. वी. काणे , हिन्दू लॉ क्वार्टली, बम्बई, 1933 ई0.
5. बृहस्पतिस्मृति, (सम्पादक) -जे. जॉली, सेक्रेड बुक ऑफ दि ईस्ट, भाग – 33, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965 ई0.
6. व्यवहारचिन्तामणि:, वाचस्पतिमिश्रकृत, (सम्पादक)- पं0 श्री प्रभुनारायण शर्मा, प0 श्रीरामचन्द्र झा, प0 श्रीशशिनाथ झा, प0 श्रीधर्मनाथ झा, का0सि0द0 संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा,1985ई0.
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2015
8. Vyavahaara Prakash of King Prithvichandra (Ed. By) J H Dhave Bhartiya Vidya Bhavan Bombay, 1962

26. नारद स्मृति 4/1/238–245